नियमसार १८० गाथा का कलश है। ३०० कलश

यस्मिन् ब्रह्मण्यनुपमगुणालङ्कृते निर्विकल्पे–
ऽक्षानामुच्चैर्विविधविषमं वर्तनं नैव किञ्चित्।

* मोह, विस्मय आदि दोष संसारियों के गुण हैं—कि जो संसार के कारणभूत हैं।

नैवान्ये वा भवि-गुण-गणाः सन्सृतेर्मूलभूताः,
तस्मिन्नित्यं निजसुखमयं भाति निर्वाणमेकम् ।।३००।।

सिद्ध के गुण की व्याख्या है। ऐसे ही आत्मा के हैं। **अनुपम गुणों से अलंकृत...** भगवान आत्मा और सिद्ध, वह अनुपम गुणों से शोभावाला-अलंकृत है। उसका अलंकार अनन्त-अनन्त अनुपम गुण, वही उसका अलंकार है। आहाहा! समझ में आया? इस देह में जो चैतन्य भगवान आत्मा है, वह अनन्त अनुपम गुणों से शोभित है। जैसे शरीररहित परमात्मा शरीररहित अनन्त अनुपम गुण से शोभित है, उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अन्दर अनन्त अनुपम गुण से अलंकृत है। समझ में आया?

एक प्रश्न उठा था न उस क्षायिक का। कि सिद्ध को तो क्षायिक है और यथाख्यात चारित्र है। आत्मा में कहाँ है समकिती को? तीनों में उतारा था न? ऐसा है कि आत्मा में अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणों का भान होने पर स्वसंवेदन आत्मा की प्रतीति-अनुभव होने पर, जितने गुण हैं, उनके सब गुणों का अंश प्रगट हुआ। वास्तव में तो अघाति भी निमित्त है जिस गुण में, उस गुण का एक अंश प्रगट हुआ है। आहाहा! सर्व गुण हैं। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त-अनन्त गुण के स्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा है। ऐसे अनन्त गुण का जहाँ अन्तरस्वभाव सन्मुख होकर स्वीकार हुआ... समझ में आया? ऐसे अनन्त गुण के अस्ति की सत्ता का स्वीकार अर्थात् वह स्वयं ही उसकी पर्याय में अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ और द्रव्य से देखें तो उन सिद्ध के आठ गुणों से अलंकृत आत्मा है।

यह आ गया है? ४७-४८ गाथा में यह आ गया है। सिद्ध जैसे ही आत्मा में आठ गुण अलंकृत हैं। वस्तु से अन्दर। समझ में आया? ४७-४८ गाथा। जैसे सिद्ध परमात्मा अशरीरी आत्म भगवान हैं, वैसा ही यह आत्मा सिद्ध के आठ गुणों से अलंकृत हैं। वे तो क्षायिक गुण हैं। समझ में आया? परन्तु उसके स्वभाव में वह सब पड़ा है, इसलिए उन सिद्ध समान ही भगवान आत्मा है। भारी! जँचना कठिन।

दूसरी बात। यह उनकी पर्याय में भी, अवस्था में भी अनन्त गुणों के जितनी संख्या से भाव, उनकी अंश शक्ति प्रगट हो गयी है। वह प्रगट हुई है, उसे एक नय से पूर्ण कहते हैं, तो भी कहा जा सकता है। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान भी एक समय में

परिपूर्ण प्रभु 'पूर्णइदम्' ऐसा भगवान आत्मा अपना निजस्वभाव, उसमें जितनी सिद्ध को प्रगट हुई पर्याय, गुण, वे सब इसमें है। है न? पण्डितजी! आहाहा!

अरे! आत्मा की क्या बात? लोगों ने आत्मा क्या है, उसे ख्याल में नहीं लिया। यह आत्मा... यह (शरीर) तो हड्डियाँ, जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, राग, वह तो पर है। वह कहीं आत्मा में नहीं है। आहाहा! आत्मा तो अनन्त गुण के अनुपम गुण से अलंकृत है। जैसे सिद्ध भगवान भी अनन्त-अनन्त बेहद अपरिमित गुण की संख्या से प्रगट में अलंकृत और अनुपम है। ऐसा ही यह भगवान आत्मा (अलंकृत है)। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' आता है? सिद्ध में तो क्षायिक पर्याय है। इसमें यह और कहाँ डाला? आया था न उसमें? क्षायिकज्ञान और यथाख्यातचारित्र। यह और कहाँ इसमें डाला वापस? भाई! वस्तु से पूरा स्वभाव जहाँ स्वसन्मुख होकर पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, वह जहाँ अनुभव में और प्रतीति में आया, कहते हैं कि उसे सिद्धसमान सब गुण प्रगट हुए। भले आंशिक प्रगट हुए, परन्तु पूर्ण प्रगट हुए—ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा! और अल्प काल में प्रगट होनेवाले हैं। आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त बेहद ऐसे गुणों की संख्यावाला एक तत्त्व...

सवेरे भाई पूछते थे, परन्तु अभी आये नहीं। बवाणिया के थे न! वहाँ गुरुकुल में आये थे। सवेरे व्याख्यान में आये थे। सवेरे या दोपहर। नहीं बैठे थे यहाँ? बवाणिया। सम्भवतः ब्राह्मण हैं। वे पूछते थे कि आपकी बात सत्य है परन्तु वह किस प्रकार से हमें आत्मा को जानना? श्रीमद् ने ऐसा कहा कि 'जो स्वरूप समझे बिना...' ऐसा बोले थे। वहाँ ववाणिया के हैं न? यहाँ आये थे। भाई को ठीक नहीं है न, वहाँ गये होंगे, मनीभाई को ठीक नहीं है। अहमदाबाद गये। आहाहा!

अरे! भगवान! तू तुझे अनजाना रहे, यह तो विस्मय हो गया। स्वयं भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत्शाश्वत् अनन्त गुण के सागर से भरपूर है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि इसकी शोभा ही ऐसे अनन्त गुण के कारण है। इस शरीर को शृंगार करते हैं न? गहने और यह और वह... अन्दर टीका-टपका करके। यह तो धूल-मिट्टी है, मुर्दा है। इसकी शोभा के लिये इसके अवयव इसे पूरते नहीं लगते। दूसरी कोई चीज़ डाले, ऐसे गहने... इसी प्रकार आत्मा अन्दर अलंकृत अपने गुण से शोभित है। उसे दूसरे की किसी की

आवश्यकता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसने अनन्त काल से नहीं जाना हो तो एक अपना तत्त्व। बाकी सब इसने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा अनन्त बार किये। कहो, समझ में आया? जैन का दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ। क्या हुआ उसमें? वस्तु क्या? अन्दर भगवान आत्मा परिपूर्ण चैतन्यनाथ, उसे जहाँ अनुभव में और उसकी दृष्टि में न आवे, तब तक धर्मी नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा!

पहले शब्द में देखो न! **अनुपम गुणों से अलंकृत...** है। सिद्ध भी ऐसे हैं और यह आत्मा भी ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **निर्विकल्प...** भगवान तो निर्विकल्प है। राग का सम्बन्ध नहीं है। विकल्प जो रागादि, (उसके साथ) सम्बन्ध नहीं है। अभेद चीज़ है आत्मा। पूर्णानन्द प्रभु अभेद चीज़ आत्मा, **ऐसे जिस ब्रह्म में (आत्मतत्त्व में) इन्द्रियों का अति विविध और विषम वर्तन किंचित् भी नहीं ही है,...** आहाहा! सिद्ध को भी नहीं है। नहीं हुआ कैसे? नहीं था तो नहीं हुआ। आहाहा! अरे! इसका विश्वास, उसका अनुभव, वह तो अलौकिक चीज़ है, भाई! लोगों को उसकी कीमत नहीं है। यह बाहर की कीमत करे, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़ा, वस्त्र छोड़े, नग्न हुआ और या बाहर में साधु हुआ, यह संयम। धूल में भी संयम नहीं है, सुन न! बाहर के वेष ऐसे पलटे वह तो जड़ के हैं। चैतन्य का वेष पलटे बिना... आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **ऐसे जिस ब्रह्म में (आत्मतत्त्व में) इन्द्रियों का अति विविध...** भगवान सिद्ध में और आत्मा में **इन्द्रियों का अति विविध...** प्रकार। पाँच इन्द्रियाँ हैं न? **विविध और विषम वर्तन...** वह वर्तन स्वरूप में है ही नहीं। सिद्ध भगवान ऐसे हैं और यह आत्मा भी अनीन्द्रिय (ऐसा ही है)। समझ में आया? लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो बड़ी-बड़ी बातें हैं। भगवान! तेरी महिमा की क्या बात करना? तुझे इतना व्यवहार से गिनने में आवे, उतना उसमें है नहीं ऐसा वह। समझ में आया? आहाहा! सिद्ध को तो व्यवहार से आठ गुण गिने हैं। निश्चय से तो अनन्त गुण हैं। समझ में आया?

ऐसा ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा ब्रह्मतत्त्व, आनन्दतत्त्व आत्मा में **इन्द्रियों का अति विविध और विषम वर्तन किंचित् भी नहीं ही है,...** आहाहा! अशरीरी भगवान सिद्ध को नहीं है, तो अशरीरी विकल्परहित आत्मा में भी वह नहीं है। इन्द्रियों का व्यापार विविध और विषम भगवान आत्मा अनीन्द्रिय में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **नहीं ही है,...** वापस ऐसा। विविध और अनेक प्रकार तथा विपरीत, ऐसा वर्तन जरा भी नहीं है।

संसार के मूलभूत अन्य (मोह-विस्मयादि) संसारीगुणसमूह नहीं ही हैं,... समझ में आया ? यह संसारी गुण। आहाहा ! विस्मय, जरा, राग और द्वेष, पुण्य और पाप, ये सब संसारी गुण हैं। संसार को पुष्ट करनेवाले हैं। भटकने को पुष्ट करनेवाले हैं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा का विकल्प, वह राग है, वह संसारी गुण है। आहाहा ! भारी कठिन काम, भाई ! ऐई ! मोहनभाई ! उसकी जाति को जानी नहीं और जाति में क्या है, उसकी भात उसने डाली नहीं। खोटी भात डाली है। राग, द्वेष और पुण्य-पाप, ये सब संसारी गुण हैं। आहाहा ! गजब बात है या नहीं ? ऐसा भगवान आत्मा... कहते हैं। **(मोह-विस्मयादि)** शब्द गाथा में आया न ? वह इसमें नहीं है। आहाहा ! होवे तो छूटे नहीं। नहीं है, इसलिए छूट जाता है। और आत्मा जैसा परमात्मा है, वैसा हो जाता है। आहाहा !

उस ब्रह्म में सदा निजसुखमय एक निर्वाण प्रकाशमान है। सिद्ध को निर्वाण है। शान्ति पूर्ण हो गयी, वह निर्वाण। इसी प्रकार आत्मा में भी सदा निज सुखमय, आत्मा आनन्दमय है। निज सुख अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द आनन्द उसका स्वभाव है। अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा उसका गुण है। ऐसे गुणमय एक निर्वाण, एकरूप स्वभाव निर्वाण, जिसमें शान्ति पड़ी है। ऐसा आत्मा है। आहाहा ! गजब बात, भाई ! यह मूल आत्मा की बात छोड़कर दूसरी सब बातें। वह कहा न कि संयम। कल बोले थे न ? यह वस्त्र छोड़कर बैठे, जरा स्त्री, पुत्र छोड़कर। हमने संयम लिया। धूल भी नहीं है, सुन न ! यह बाहर की चीज़ कहाँ अन्दर घुस गयी थी, उसे छोड़ा ? तूने माना था कि मैं अल्पज्ञ और राग-द्वेषवाला हूँ। यह छोड़ना चाहिए। मैं सर्वज्ञ और वीतरागमूर्ति हूँ, ऐसी मान्यता द्वारा अल्पज्ञ और राग-द्वेष होवे, उसे छोड़ना चाहिए। वह तो छोड़ा नहीं और बाहर का छोड़कर बैठा। हम हो गये साधु। धूल भी नहीं है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? भारी काम भाई ऐसा।

अरे ! तेरी महिमा की क्या बात करना ! प्रभु ! तू बड़ा कैसा ? कि वाणी में न आवे ऐसा। विकल्प के राग में, प्रशस्त राग में न आवे। अरे ! उसमें तो न आवे परन्तु एक समय की पर्याय में पूरा रूप न आवे। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान ब्रह्मस्वरूप प्रभु और सिद्ध ब्रह्मस्वरूप **सदा निजसुखमय...** त्रिकाल आनन्दमय है। आहाहा ! निज सुखमय, ऐसा। सुखवाला, ऐसा नहीं। निज

सुखमय। अभेद है। आहाहा! अरे! इसका स्वीकार, उसकी दृष्टि, उसकी कीमत क्या है! कहते हैं। समझ में आया?

एक निर्वाण प्रकाशमान है। मोक्षस्वरूप ही प्रकाशमान आत्मा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! बाहर से पाँच-पच्चीस लाख मिले, बँगला मिले, स्त्री मिले, पुत्र मिले, कुछ (तो मानता है कि) हम सुखी हैं। मूढ़ है। जहर का प्याला पीकर अमृत है, ऐसा मानता है। समझ में आया? अन्दर का निर्विकल्प आनन्द, उसे भूलकर यह सब आनन्द है, हमको मजा है। हमारा उत्साहित वीर्य, प्रफुल्लित वीर्य होता है। अरे! भगवान! वह तो जहर की सोजिस है। समझ में आया? क्या होगा इसमें त्रम्बकभाई? यह सब पैसेवाले बड़े कहलाते हैं। ऐई! करोड़पति, दो करोड़पति, पाँच करोड़पति। जड़ के पति! चैतन्य के पति हुए बिना उसकी शान्ति मिले ऐसा नहीं है। आहाहा! एक निर्वाण... निर्वाण... निर्वाण... निर्वाण की शान्ति की है। कषायभाव बुझ गया है। निर्वाण अर्थात् कषायभाव बुझ गया है और अकषायभाव प्रगट हुआ है। समझ में आया? उसे निर्वाण कहने में आता है। भगवान भी अकषायभावस्वरूप ही है। कषायभाव का उसमें अभाव है, इसलिए आत्मा भी... प्रकाशमान निर्वाण (स्वरूप है)। जिसके स्वीकारमात्र से शान्ति आवे, उसकी पूर्ण प्रगटता की शान्ति की क्या बात करना! समझ में आया? यह १८० का कलश हुआ।

गाथा-१८१

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१८१।।

नापि कर्म नोकर्म नापि चिन्ता नैवार्तरौद्रे।
नापि धर्मशुक्लध्याने तत्रैव च भवति निर्वाणम्।।१८१।।

सकलकर्मविनिर्मुक्तशुभाशुभशुद्धध्यानध्येयविकल्पविनिर्मुक्तपरमतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। सदा निरञ्जनत्वान्न द्रव्यकर्माष्टकं, त्रिकालनिरुपाधिस्वरूपत्वान्न नोकर्मपञ्चकं च, अमनस्कत्वान्न चिन्ता, औदयिकादिविभावभावानामभावादार्तरौद्रध्याने न स्तः, धर्मशुक्लध्यानयोग्यचरमशरीराभावात्तद्द्वितयमपि न भवति। तत्रैव च महानन्द इति।

रे कर्म नहिं नोकर्म, चिंता, आर्त-रौद्र जहाँ नहीं।
है धर्म-शुक्ल सुध्यान नहिं, निर्वाण जानो रे वही॥१८१॥

अन्वयार्थ : [न अपि कर्म नोकर्म] जहाँ कर्म और नोकर्म नहीं है, [न अपि चिन्ता] चिन्ता नहीं है, [न एव आर्तरौद्रे] आर्त और रौद्रध्यान नहीं हैं, [न अपि धर्मशुक्लध्याने] धर्म और शुक्लध्यान नहीं हैं, [तत्र एव च निर्वाणम् भवति] वहीं निर्वाण है (अर्थात् कर्मादिरहित परमतत्त्व में ही निर्वाण है)।

टीका : यह, सर्व कर्मों से विमुक्त (-रहित) तथा शुभ, अशुभ और शुद्ध ध्यान तथा ध्येय के विकल्पों से विमुक्त परमतत्त्व के स्वरूप का कथन है।

(परमतत्त्व) सदा निरंजन होने के कारण (उसे) आठ द्रव्यकर्म नहीं हैं; तीनों काल निरुपाधिस्वरूपवाला होने के कारण (उसे) पाँच नोकर्म (-शरीर) नहीं है; मन रहित होने के कारण चिन्ता नहीं है; औदयिकादि विभावभावों का अभाव होने के कारण आर्त और रौद्रध्यान नहीं हैं; धर्मध्यान और शुक्लध्यान के योग्य चरम शरीर का अभाव होने के कारण वे दो ध्यान नहीं हैं। वहीं महा आनन्द है।

गाथा - १८१ पर प्रवचन

१८१ (गाथा)

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१८१।।

रे कर्म नहिं नोकर्म, चिंता, आर्त-रौद्र जहाँ नहीं।
है धर्म-शुक्ल सुध्यान नहिं, निर्वाण जानो रे वही॥१८१॥

वैसे तो निर्वाण कहा। अन्दर परमतत्त्व डाला। दोनों व्याख्या है।

टीका : यह, सर्व कर्मों से विमुक्त (-रहित)... सर्व कर्म जड़ और भाव से रहित **तथा शुभ, अशुभ और शुद्ध ध्यान तथा ध्येय के विकल्पों से विमुक्त...** शुभ ध्यान और अशुभ ध्यान, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। यह ध्यान और ध्येय के भेद से विकल्प से मुक्त **परमतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** परम तत्त्व सिद्ध भगवान अशरीरी हुए वे और परम तत्त्व यह भगवान आत्मा, दोनों का कथन है। आहाहा! परन्तु यह होली वापस कहाँ से उपाधि आयी। हैं! नेमिनाथभाई! कितनी व्यवस्था में रुकना... आहाहा! यह करना और यह करना और यह करना... चतुर व्यक्ति होवे तो व्यवस्था से काम ले न?

मुमुक्षु : पर का (काम) लिया है ही कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं लिया जाता, सुन न! चतुर किसे कहना? बाहर के काम की व्यवस्था में चतुर (माने), वह तो मूढ़ है। आहाहा! भगवान आत्मा! नेमिदासभाई! अकेले को उपाधि कितनी? क्या करना इस मकान का? यह सब डालना कहाँ? कैसे करना? कितनी चिन्ताएँ आती हैं अन्दर, लो! सब समरूपता रखनी चाहिए। जरा हाथ में भी रखे। नहीं तो फिर कोई सेवा नहीं करेगा। यह सब उपाधि कितनी? ऐई! पोपटभाई! आहाहा! भाई! तेरे हाथ में तो अनन्त गुण का हीरा है। समझ में आया? वह तेरे हाथ में तेरी चीज़ है। यह तो धूल भी तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! नहीं, वहाँ उलझा है; है, वहाँ देखता नहीं। पोपटभाई! आहाहा!

सदा निरंजन होने के कारण... सिद्ध भगवान तो सदा निरंजन हैं। उसी प्रकार यह आत्मा भी त्रिकाल निरंजन है। आहाहा! **सदा निरंजन...** है न? तीनों काल भगवान राग के अंजन और मैल से रहित प्रभु है। निरंजन नाथ। अंजन-अंजन, नि-अंजन। पुण्य और पाप के विकल्प अंजन अर्थात् मैल अर्थात् कालिमा है। उनसे (रहित) भगवान आत्मा निरंजन है। आहाहा! समझ में आया? **सदा निरंजन...** तीनों काल, प्रभु! तेरी जाति में तो निरंजनता है। अंजन अर्थात् मैल। आँख में अंजन लगाते हैं न? तब उस अंजन से फिर शोभा देता है, ऐसा कहते हैं। उस अंजन से अशोभता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। अंजन लगाते हैं छोटे लड़के को सवेरे लगाते हैं न! काली लगे, अच्छी लगे। ऐसे चिकनी लगे चिकनी और शोभे। यहाँ कहते हैं कि अंजन से आत्मा अशोभता है। वह तो निरंजन से शोभता है। आहाहा!

सदा निरंजन होने के कारण... तीनों काल सिद्ध भगवान और आत्मा निरंजन है। **आठ द्रव्यकर्म नहीं हैं;...** वह आठ कर्म नहीं। कर्म, कर्म में है। वह तो जड़ है। जड़ जड़ में, आत्मा आत्मा में। आत्मा में कर्म कैसे? भारी कठिन। सब वर्णन किया। आठ कर्मसहित है। अरे! त्रिलोकनाथ तो ऐसा कहते हैं कि आठ कर्म के कारण जीव भटका है। लो! यह ऐसा कहते हैं। ऐई! (संवत्) २००६ के वर्ष में वहाँ पालीताणा... २२ वर्ष हुए। प्रतापभाई, केसा, प्रताप न? जीवाप्रताप। यह आया लेकर। ...खबर है। हों! ऐसा कहते हैं ऐसा। तुम पुण्य-पाप नहीं मानते। कर्म के कारण भटकता है। भगवान ऐसा कहते हैं कर्म के (कारण भटकता है)। तुम कहते हो, कर्म के कारण नहीं। वह अपनी भूल के कारण भटकता है। ऐसा नहीं है। भगवान ने ऐसा नहीं कहा। अब ऐसा विवाद। अर..र..र..! तू यह क्या करता है? तू भूला और भूल कर्म के ऊपर डाले, ऐसा अन्याय करनेवाले को आत्मा का स्वरूप प्राप्त कैसे होगा? आहाहा!

कहते हैं कि तू तो आठ कर्मरहित है। वस्तु आत्मा आठ कर्मरहित है। कर्म तो जड़ है। भगवान तो चैतन्यमूर्ति आत्मा है। उसमें अन्दर कर्म कैसे। आहाहा! यह विवाद उठा। ऐई! चेतनजी!

मुमुक्षु : अनन्त उपकारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त उपकारी ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा था, हों! 'अनन्त उपकारी जिनराज ऐसा कहते हैं कि आठ कर्म के कारण भटका है। तुम उसका विरोध करते हो।' कर्म के कारण भटका नहीं, अपने स्वरूप को नहीं जाना, नहीं माना, नहीं पहचाना; इसलिए भटका है। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' कर्म-बर्म कोई भटकाता नहीं है। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' यह तो एक सादी बात है, लो! और इसमें भी विवाद। अरे! भगवान! कहाँ लेकर बैठा? भाई! तू विवादरहित चीज़ है न, नाथ! यह विवाद के विकल्प तुझे शोभा देते हैं? भाई! आहाहा! यह निरंजन निराकार ब्रह्म प्रभु सदा आठ कर्म से रहित है। **तीनों काल निरुपाधिस्वरूपवाला होने के कारण (उसे) पाँच नोकर्म (-शरीर) नहीं है;...** आहाहा! शरीर नहीं, मन, भाषा भी उसे नहीं। भगवान आत्मा में भाषा और मन है नहीं। वह तो भिन्न है। चैतन्यमूर्ति अरूपी आनन्दघन है। समझ में आया?

अरे रे! इसके घर की बातें सुनने को मिलती नहीं और पर घर की माँडकर बैठता है। आहाहा! उसके भटकने का अन्त कब आयेगा? बाहर का उत्साह। आहाहा! पुत्र का विवाह होता हो, पाँच-पचास लाख की पूँजी हो और पाँच लाख खर्च करना हो। देखो! फिर मैं चौड़ा और गली सकड़ी। सौ मोटरें तैयार करना। सगे-सम्बन्धी को कहता है। एक साथ बड़ी शोभायात्रा निकालनी है। जितने अपने सगे-सम्बन्धी या आढ़तिया और सबके (लिये) मोटर लाना। रात्रि में भाई की शोभायात्रा निकालनी है। अब चौरासी में भटकने को जाता है न। आहाहा! देखो! यह इसका उत्साह। अरे! तुझे चैतन्यमूर्ति भगवान, इसके ऐसे गुण, कर्मरहित चीज़ में आरूढ़ होने का तुझे उत्साह नहीं आता और इसमें उत्साह आता है। आहाहा! इसने सच्चे तत्त्व को नहीं जाना, नहीं माना, इसलिए इसका अर्थ कि इसने सच्चे तत्त्व को मार डाला है। स्वीकार नहीं किया। आहा! यह जिविया ववरोविया है। मिच्छामि पणिक्कमणु आता है या नहीं? पोपटभाई! किया था? या नहीं किया होगा? गुलाबचन्दभाई ने नहीं किया होगा। सामायिक में नहीं आता? सामायिक में। पहला णमो अरिहन्ताणं, पश्चात् तिक्खुत्तो। पश्चात् ईरिया वहियाए, पश्चात् तस्सउत्तरी, पश्चात् लोगस्स, पश्चात् करेमिभन्ते, पश्चात् णमोत्थुणं। सात पाठ आते हैं। तुमने किये थे या नहीं? नहीं। आहाहा!

तीनों काल निरुपाधिस्वरूपवाला होने के कारण... इसमें भाषा, मन और शरीर

नहीं है। **मन रहित होने के कारण चिन्ता नहीं है;...** भगवान आत्मा में मन कहाँ है? इसी प्रकार सिद्ध को मन कहाँ है? मन होवे तो चिन्ता हो। आहाहा! किसकी चिन्ता? समझ में आया? भगवान आत्मा निश्चिन्त स्वरूप है। ऐसा तेरा तत्त्व अनादि का ऐसा है। परन्तु माना नहीं। माना नहीं। मान्यता अन्यत्र कर दी है। आहाहा!

औदयिकादि विभावभावों का अभाव होने के कारण... कलश में तो स्पष्ट सिद्ध ही लेंगे। कलश में लेंगे। कहते हैं कि सिद्ध भगवान में उदय, उपशमादि है नहीं। इसी प्रकार आत्मा में यह उदय, उपशमादि अन्दर कुछ है नहीं। वह तो क्षायिकभाव भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्षायिकभाव को भी एक स्वद्रव्य की पूर्ण अखण्डता की अपेक्षा से एक अंश दशा को भी परद्रव्य कहकर, परभाव कहकर हेय सिद्ध किया है। आहाहा! इसकी नजरों में ऐसा आत्मा है, ऐसा जब तक न आवे, तब तक इसे आत्मज्ञान और दर्शन नहीं होता। आहाहा! भाई, सवेरे पूछते थे। अब क्या करना, कहते थे। ....तो है। ...बराबर इसे समझ चाहिए। जिस प्रकार है, उस प्रकार से ज्ञान करना। ज्ञान आ करके अन्दर ढले तब, अनुभव होता है। यह तो सिद्ध को जिस प्रकार से व्यवहार-व्यवहार विकल्प से लक्ष्य में, श्रद्धा में, विश्वास में लेना चाहिए, उस प्रकार से न आवे, तब तो अन्तर में उसका जवाब नहीं आता। अन्तर का जवाब अर्थात्? वह अन्तर्मुख नहीं हो सकता। समझ में आया?

राग-द्वेष का **विभावभावों का अभाव होने के कारण...** यह सिद्ध की व्याख्या है। इसलिए क्षायिकभाव का अभाव नहीं... **आर्त और रौद्रध्यान नहीं हैं;...** इसी तरह चैतन्यमूर्ति भगवान परमतत्त्व आत्मा, उसे आर्त और रौद्र, विरुद्ध विकारी भाव का ध्यान, वह स्वरूप में है नहीं। यह **धर्मध्यान और शुक्लध्यान के योग्य चरम शरीर का अभाव होने के कारण...** लो! धर्मध्यान और शुक्लध्यान के योग्य चरमशरीर का अभाव होने से **वे दो ध्यान नहीं हैं।** समझ में आया? उसमें मन नहीं, इसलिए चिन्ता नहीं। समझ में आया? निरंजन होने के कारण कर्म नहीं। सदा निरुपाधि होने के कारण पाँच नोकर्म नहीं। यह न्याय दिये हैं। औदयिकादि का अभाव होने के कारण ध्यान नहीं है।

धर्मध्यान और शुक्लध्यान के योग्य चरम शरीर का अभाव होने के कारण वे दो ध्यान नहीं हैं। वहीं महा आनन्द है। आत्मा की मोक्षदशा, सिद्धदशा, वहाँ आनन्द है और

इस आनन्द का धाम भगवान स्वयं है। वह आनन्द कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका स्वीकार होने पर जो आनन्द पर्याय में प्रगट होता है, उसे धर्म कहते हैं और उसकी पूर्ण आनन्ददशा प्रगट हो, उसे सिद्ध कहते हैं। आहाहा!

मनुष्य ने साग-भाजी की कीमत की है परन्तु आत्मा की कीमत नहीं की। आहाहा! करेला अच्छा आया हो और घी में कड़क किये हों और उसमें आम का रस तथा रोटी खाता हो तो... आहाहा! मानो यह क्या आया? धूल भी नहीं, सुन न! ये विषय सुख का कारण है? यह अकिंचित् है। तूने कल्पना की है कि यह ठीक है, वह तो तेरी कल्पना का विषय हुआ। समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न? विषय क्या करे? यह तो प्रवचनसार में। विषय क्या करे? विषय तो अकिंचित्कर है। तेरी कल्पना तूने मानी है कि यह मुझे ठीक है, यह तेरा भाव रुका हुआ, वह तेरा भाव है। दूसरे के कारण कुछ नहीं है। कल्पना से तूने माना है कि यह अच्छा। आहाहा! स्त्री में सुख है, इज्जत में सुख है। शरीर सुन्दर, रूपवान, गोरा मक्खन जैसा, उसे स्पर्श करने में सुख है। इन विषयों ने कहीं तुझे सुख की कल्पना नहीं करायी है तथा उसमें विषय का सुख है भी नहीं। तूने कल्पना से ऐसा माना है कि उसमें ऐसा है। वह तो तेरा विषय, उसमें परविषय क्या करे? आहाहा! पर को विषय बनाकर तूने कल्पना की है। स्व को विषय बनाकर निर्विकल्प (अनुभव) करे, वह सुख का कारण है। समझ में आया? आत्मा, आत्मा माना।

वहीं महा आनन्द है। जहाँ शुक्लध्यान और धर्मध्यान भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। वहाँ महा आनन्द है। शुक्लध्यान हो, वहाँ भी अभी पूर्ण आनन्द नहीं है। अव्याबाध आनन्द नहीं है। लो! समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा में महा आनन्द है। आती है न यह बात? कितने ही गुण समकित आदि प्रगट हुए, उतना तो योग का भी अभाव हुआ है। उस प्रकार का (अभाव हुआ है)। भाई! आता है न? अनन्तानुबन्धी जहाँ गयी, मिथ्यात्व गया तो उतना उस सम्बन्धी का योग भी गया है। बात सत्य है। आहाहा! ऐसे तो गया, परन्तु वास्तव में जितने चार अघातिकर्म हैं, उनका अंश भी गया है। पूरा आत्मा पूरे गुण का पिण्ड जहाँ निर्मल की पर्याय में आया, (वहाँ) अव्याबाध आदि पर्याय का अंश तो आया है। समझ में आया? क्या कहा जाता है यह?

कहते हैं कि अघातिकर्म के निमित्तवाले जो गुण हैं न? अवगुण। उनका भी किंचित् अंश में तो सम्यग्दर्शन होने पर योग का गुण भी वहाँ एक अंश निर्मल हुआ है, उस सम्बन्धी का। मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी का... इतना तो अघाति के जो निमित्तवाले गुण, उनका आंशिक तो शुद्ध हुआ है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान का अंश प्रगट होता है, वह अभी स्वीकार करना उसे कठिन पड़ता है। केवलज्ञान तो पूर्ण स्वरूप अखण्ड है। वह क्षायिक है, इसलिए उसमें टुकड़ा कैसे... अरे! भगवान! विवाद है न! आहाहा! पूरी चीज़ में और यह अंश कौन सा? अरे! प्रभु! वह तो अंश है, वह इसका है, भाई! वह तो पूर्ण प्रगट नहीं हुआ, इसलिए उसी घातिकर्म का निमित्त कहने में आता है। आहाहा! अनन्त गुणों में यह एक अंश शामिल आया या नहीं?

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न? अनादि का जो क्षयोपशम का अंश है, वह भी बन्ध का कारण नहीं है, ऐसा वहाँ लिया है। वह इसकी जाति का है। आहाहा! भले स्वलक्ष्यी न हो, परन्तु उघाड़ तो है न? उघाड़ का अंश कहीं बन्ध का कारण है? परन्तु पूरा आत्मा है, उस दृष्टि का जहाँ भान हुआ, वहाँ उसके परिणाम सब अबन्ध परिणाम ही हुए हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़े परिणाम बन्ध के रहे, वे पृथक् में रहे हैं। इसलिए उसे सिद्धसमान की पर्याय हुई, ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा! गजब बात है न इसकी! यह करोड़, दो करोड़ हो, वहाँ अरबपति का वह फुदक्का मारे कि अब अरबपति होना है, अब हमारे ऐसा होना है, हमारे ऐसा होना है। वहाँ उसका उत्साह। नहीं है, उसे भी मानो लाया और आ जाएगा, ऐसा माने। इसी प्रकार भगवान पूर्णानन्द प्रभु, कहते हैं कि जहाँ महा आनन्द है, उसकी जहाँ अन्तर में स्वीकार दशा हुई, उस पर्याय में भी महा आनन्द प्रगट होता है। आहाहा! सिद्ध को महा आनन्द पूर्ण है।

श्लोक - ३०१

[अब, इस १८१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

निर्वाणस्थे प्रहत-दुरित-ध्वान्त-सङ्घे विशुद्धे,
कर्माशेषं न च न च पुनर्ध्यानकं तच्चतुष्कम्।
तस्मिन्सिद्धे भगवति परम्ब्रह्मणि ज्ञानपुञ्जे
काचिन्मुक्तिर्भवति वचसां मानसानां च दूरम्।।३०१।।

(वीरछन्द)

जो निर्वाण धाम में स्थित पाप तिमिर का लेश नहीं।
जो विशुद्ध उन परम ब्रह्म में कर्म प्रकृति नहिं किञ्चित् भी॥
सिद्धरूप उन ज्ञानपुञ्ज में किञ्चित् रहें न चारों ध्यान।
उनमें ऐसी कोई मुक्ति है मन-वच का नहिं नाम निशान॥३०१॥

[श्लोकार्थः—] जो निर्वाण में स्थित है, जिसने पापरूपी अन्धकार के समूह का नाश किया है और जो विशुद्ध है, उसमें (उस परमब्रह्म में) अशेष (समस्त) कर्म नहीं है तथा वे चार ध्यान नहीं हैं। उस सिद्धरूप भगवान ज्ञानपुंज परमब्रह्म में कोई ऐसी मुक्ति है कि जो वचन और मन से दूर है।३०१।

श्लोक - ३०१ पर प्रवचन

[अब, इस १८१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

निर्वाणस्थे प्रहत-दुरित-ध्वान्त-सङ्घे विशुद्धे,
कर्माशेषं न च न च पुनर्ध्यानकं तच्चतुष्कम्।

तस्मिन्सिद्धे भगवति परम्ब्रह्मणि ज्ञानपुञ्जे
काचिन्मुक्तिर्भवति वचसां मानसानां च दूरम् ।।३०१।।

आहाहा! शब्द कम पड़ते हैं न?

श्लोकार्थ : जो निर्वाण में स्थित है,... जो आत्मा की शान्ति-पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हुई है, उसमें—निर्वाण में स्थित है। **जिसने पापरूपी अन्धकार के समूह का नाश किया है...** यहाँ तो पुण्य और पाप दोनों पाप है। ऐसे पुण्य और पाप के भाव का जिसने नाश किया है। वे अन्धकार हैं, कहते हैं। देखो भाषा! चैतन्य के प्रकाश के समक्ष वे पुण्य और पाप के दोनों भाव वे अज्ञान और अन्धकार हैं। समझ में आया? '**प्रहतदुरित**' उसका जिसने नाश किया है। अरे! ज्ञान भगवान के समक्ष अज्ञान अन्धकार कैसे रहे? सूर्य का प्रकाश हो और अन्धकार रहे, ऐसा नहीं होता।

'लालन' दृष्टान्त नहीं देते थे? कि अन्धकार और प्रकाश दोनों होकर अन्धकार ने फरियाद की कि वह मुझे रहने नहीं देता। कहे, आना दोनों इकट्ठे होकर, न्याय दूँगा। परन्तु सूर्य आवे, वहाँ अन्धकार नहीं होता और अन्धकार हो, वहाँ सूर्य नहीं होता। इकट्ठे कब हों? अन्धकार ने फरियाद की कि यह सूर्य मुझे बाधा ही करता है। हमारा नाश कर डालता है। जरा आप न्याय दो, न्याय। दोनों कोर्ट में इकट्ठे होकर आना। मेरे पास आना तो सही इकट्ठे होकर। इकट्ठे किस प्रकार हों? आहाहा! जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं है। वहाँ इकट्ठे किस प्रकार हों? ऐसा आता है। लोग बातें करते हैं।

यहाँ तो भगवान केवलज्ञान का नाथ... आहाहा! उसके चैतन्य प्रकाश के नूर के समक्ष उस चैतन्य के प्रकाश के पूर के प्रवाह के समक्ष पुण्य का-पाप का अन्धकार का तो नाश हो जाता है। कहो, भीखाभाई! ऐसा आत्मा। अब उसमें पाँच-पचास हजार मिले, लाख-दो लाख मिले तो ऐसा हो जाता है कि आहाहा! मुझे बाहुबल से प्राप्त हुए हैं, नहीं थे और प्राप्त हुए हैं। बापू कुछ नहीं रख गये थे और हमने बाहुबल से कमाये हैं। ऐसा करके पिता को हल्का ठहराया। ऐई! मलूकचन्दभाई! कहा था एक बार। खबर है? अहमदाबाद में कहा था। बापू ने कहाँ पैसे का धञ्चका देखा है। थञ्चका नहीं, शब्द कुछ (दूसरा) था। क्या था? वह कुछ था। इन्होंने रस कहाँ देखा है? ऐसा कहा था। उनके पास कितने हों, पचास हजार, लाख, दो लाख दिये अभी। पैंतीस-चालीस हजार उसके

पिता के पास थे। भाई सब शामिल गिने जाते हैं। आहाहा! लड़के करोड़पति हुए तो कहे, यह तो पिता ने पैसे का रस कहाँ देखा है। हमने उसका रस देखा है। आहाहा! जहर का रस है। आहाहा! गजब (बात)! परन्तु दुनिया से भारी उल्टा, हों! आहाहा!

कहते हैं, निर्वाण परमात्मस्वरूप ऐसे चैतन्य के प्रकाश में जो स्थित है। जिसने पाप और पुण्य के अज्ञानरूपी अन्धकार के समूह का नाश किया है। **और जो विशुद्ध है,...** लो! यहाँ तो विशुद्ध निर्मलता के (अर्थ में) है। विशुद्ध। शुभभाव को भी विशुद्ध कहा जाता है, शुद्ध को भी विशुद्ध कहा जाता है। पूर्ण शुद्ध, वि-शुद्ध—विशेष पूर्ण शुद्धता जिन्हें प्रगट हुई, ऐसे परमात्मा सिद्ध, **उसमें (उस परमब्रह्म में) अशेष (समस्त) कर्म नहीं है...** कोई कर्ममात्र नहीं है। आहाहा! और कर्म नहीं है तो कर्म के कारण से होनेवाले भाव भी नहीं है। वे **वे चार ध्यान नहीं हैं।** वे आये न? तत् को? तत्चतुष्टय न, उसमें। **वे चार ध्यान नहीं हैं।** आर्त, रौद्रध्यान नहीं है। समझ में आया? पहले चर्चा होती थी, प्रतिक्रमण में आता है न? पडिक्कमामि चऊहिं जाणेहि पडिकमामि चऊहि झाणेहि—चौथे श्रमणसूत्र में आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। पहले चार ध्यान से कैसे विमुख हो? अरे! परन्तु चारों ध्यान से विमुख हो, तब पूर्ण होता है। ऐई! पडिक्कमणा चौथे सूत्र में। श्रमणसूत्र में पडिक्कमामि चऊहिं जाणेहि... चिल्लाहट मचाते हैं।

मुमुक्षु : यह तो उनकी पुस्तक में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें सूत्र है, परन्तु उसका अर्थ करने में चिल्लाहट करते थे। यह तो बहुत वर्ष की बात है, हों! पचास वर्ष (हुए)। पडिक्कमामि चऊहिं झाणेहिं, यह आता है या नहीं? शुक्लध्यान से वापिस फिरना? पडिक्कमणा से वापिस फिरना, ऐसा इसका अर्थ है। उसका अर्थ ही यह है कि चार ध्यान मुझमें नहीं है। मैं तो अखण्डानन्द एकरूप हूँ। समझ में आया? श्रमणसूत्र में आता है, स्थानकवासी में आता है, मन्दिरमार्गी में नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुक्लध्यान का दोष लगा होगा? उसका अर्थ ही यह है। बात तो ऐसी ही है। ऐसा कि चार ध्यान का दोष लगा तो शुक्लध्यान... शुक्लध्यान तो तुझे नहीं है। और वह शुक्लध्यान ही स्वयं अधूरा है। वह मेरा पूर्ण स्वरूप नहीं है। समझ में आया?

उस सिद्धरूप भगवान ज्ञानपुंज परमब्रह्म में कोई ऐसी मुक्ति है... सिद्धरूप भगवान अशरीरी प्रभु हुए, ऐसे भगवान ज्ञानपुंज परमब्रह्म में **कोई ऐसी मुक्ति है कि जो वचन और मन से दूर है।** वचन और मन के विकल्प से भी दूर है। ऐसी मुक्ति को मोक्ष कहते हैं। समझ में आया? वचनातीत, विकल्पातीत, मन से रहित—ऐसी पूर्ण आनन्द की दशा, पूर्ण ज्ञानपुंज की प्रगट दशा को मुक्ति कहा जाता है। यहाँ तो कहे, बैकुंठ में जाए, वहाँ तुमको भगवान मिलेंगे, उनकी सेवा करना। अभी यहाँ इसे नौकर रहना है। ऐसे के ऐसे। मुक्ति की खबर भी नहीं होती और वहाँ फिर तुमने हमारे साधु को, पड़गाह, लड्डू दिये होंगे, वहाँ तुम्हें लड्डू मिलेंगे। अभी इसे शरीर, उसे थाली, इसे लड्डू और ऐसी मुक्ति बैकुण्ठ की। गप्प ही गप्प मारी है न। आहाहा! (यहाँ) तो मुक्ति अर्थात् परम आनन्द की तेरी दशा, इसका नाम मुक्ति कहा जाता है। आहाहा! वहाँ फिर भगवान के पास जाए और भगवान की सेवा करे, वहाँ तो अभी नौकर रहा।

मुमुक्षु : भगवान को सेवा की आवश्यकता क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को शरीर नहीं तो सेवा किसकी करे? भगवान तो शरीर रहित है। आहाहा! परन्तु भारी गप्प मारी है। लोगों को बेचारों को कुछ खबर नहीं होती। अन्धानुकरण... 'अन्धो अन्ध पलाय...' आता है न? सूयडगडांग में आता है। अन्धा दिखानेवाला, अन्धा चलनेवाला, दोनों गिरे गड्ढे में। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी मुक्ति कोई अलौकिक मन और वचन से पार है। वहाँ फिर शरीर और उसे सेवा, और ऐसा होता नहीं। यह अज्ञानियों ने कल्पित करके रचना की है। आहाहा! यह १८१ हुई।

गाथा-१८२

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं।
केवल-दिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं।।१८२।।

विद्यते केवलज्ञानं केवलसौख्यं च केवलं वीर्यम्।
केवल-दृष्टि-रमूर्तत्व-मस्तित्वं सप्रदेशत्वम्।।१८२।।

भगवतः सिद्धस्य स्वभावगुणस्वरूपाख्यानमेतत्।

निरवशेषेणान्तर्मुखाकारस्वात्माश्रयनिश्चयपरमशुक्लध्यानबलेन ज्ञानावरणाद्यष्टविध-कर्मविलये जाते ततो भगवतः सिद्धपरमेष्ठिनः केवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलवीर्यकेवलसौख्य-मूर्तत्वास्तित्वसप्रदेशत्वादिस्वभावगुणा भवन्ति इति।

दृग् ज्ञान केवल, सौख्य केवल और केवल वीर्यता।
होते उन्हें सप्रदेशता, अस्तित्व, मूर्ति-विहीनता॥१८२॥

अन्वयार्थ : [केवलज्ञानं] (सिद्ध भगवान को) केवलज्ञान, [केवलदृष्टिः] केवलदर्शन, [केवलसौख्यं च] केवलसुख, [केवलं वीर्यम्] केवलवीर्य, [अमूर्तत्वम्] अमूर्तत्व, [अस्तित्वं] अस्तित्व और [सप्रदेशत्वम्] सप्रदेशत्व [विद्यते] होते हैं।

टीका : यह, भगवान सिद्ध के स्वभावगुणों के स्वरूप का कथन है।

निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार (सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसे), स्वात्माश्रित निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों का विलय होने पर, उस कारण से भगवान सिद्धपरमेष्ठी को केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य, केवलसुख, अमूर्तत्व, अस्तित्व, सप्रदेशत्व आदि स्वभावगुण होते हैं।

गाथा - १८२ पर प्रवचन

१८२। अब इसमें तो स्पष्ट बात है। परमात्मा, जब आत्मा सिद्ध होता है। परमात्मा (होता है), तब उसमें क्या होता है, उसका वर्णन है। अभी भी वह सब शक्ति में है, परन्तु पर्याय में प्रगट हो, तब क्या (होता है) उसका वर्णन करते हैं।

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं।
केवल-दिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं।।१८२।।

दृग् ज्ञान केवल, सौख्य केवल और केवल वीर्यता।
होते उन्हें सप्रदेशता, अस्तित्व, मूर्ति-विहीनता॥१८२॥

टीका : यह, भगवान सिद्ध के... सिद्ध अर्थात् परमात्मा हों वे। संसार का नाश करके अपनी परमात्मदशा प्रगट करे, उसे यहाँ सिद्ध भगवान—मुक्तिदशा कहते हैं। **यह, भगवान सिद्ध के स्वभावगुणों के स्वरूप का कथन है।** लो! गुण-गुण। पर्याय की बात है। भाषा तो ऐसी ही बोली जाती है न! क्या कहते हैं? **स्वभावगुणों के स्वरूप का कथन है।** अब इसे सिद्धपद कैसे प्राप्त होता है, इसकी बात करते हैं।

निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार... अन्तर्मुख स्वरूप। भगवान आत्मा अन्तर में पूर्णानन्द है। उसे अन्तर्मुख ध्यान करके **(सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसे), स्वात्माश्रित निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से...** लो! ऐसा स्वात्मा, उसके आश्रय से निश्चय अर्थात् परमशुक्लध्यान। आहाहा! निश्चय परमशुक्लध्यान। यह तो अन्तिम है न? इसके बल से **ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों का...** नाश ऐसा हुआ। कर्मों का नाश हुआ तो यह बल प्रगट हुआ, ऐसा यहाँ नहीं कहा। ऐसे बल से ज्ञानावरणीय (आदि) कर्मों का नाश किया है।

आठ प्रकार के कर्मों का विलय होने पर,... विलय अर्थात् नाश। परन्तु ऐसे बल से नाश होने पर, ऐसा कहा है। वे ऐसा कहते हैं, कर्म का नाश होवे तो गुण प्रगट होते हैं, ऐसा कहो। यहाँ तो आत्मबल के ध्यान में ऐसे कर्म नाश हो जाएँगे। समझ में आया? .... बाकी तो अपने स्वभाव का आश्रय करे तो उसका—अशुद्धता का नाश हो जाने पर, उसका निमित्तपना कर्म को है, वह कर्म भी अपने आप परिणम जाता है। कर्म, अकर्मरूप

हो जाता है। कर्म, अकर्मरूप हो, वह कर्म का नाश कहा जाता है।

उस कारण से भगवान सिद्धपरमेष्ठी को केवलज्ञान,... पूर्ण ज्ञान। **केवलदर्शन,...** पूर्ण दर्शन **केवलवीर्य,...** एकरूप वीर्य। **केवलसुख,...** एकरूप सुख। **अमूर्तत्व, अस्तित्व,...** अस्तित्व पूर्ण सिद्ध प्रगट किया। **सप्रदेशत्व...** असंख्यप्रदेशी है न?

मुमुक्षु : भगवान को....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे कहाँ चले गये बताते हैं। दूसरे की अपेक्षा अलग मुक्ति की दशा। सप्रदेशत्व इत्यादि स्वभावपर्यायें प्रगट हो गयी हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)